ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्

ओंकार-महिमा

लेखक :

यशपाल आर्यबन्धु

प्रकाशक :

आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी

मुरादाबाद

मूल्य :

... हेतु यथाशक्ति सहयोग

प्रथम संस्करण अक्तूबर ८३

प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य

हम आपसे प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य नहीं ले रहे, अपितु सप्रेम भेंट कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि भविष्य में भी आपको इसी प्रकार का उत्तम-उत्तम साहित्य भेंट करते रहें। पर साहित्य प्रकाशन के लिये धन तो चाहिए ही। अतः आगामी प्रकाशन के लिये हम आपसे सहयोग की अपील करते हैं। **आगामी प्रकाशन के लिये यथाशक्ति सहयोग ही प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य है। क्या चुकायेंगे आप?**

हम चाहते हैं कि हमारा साहित्य प्रचार-यज्ञ अनवरत रूप एवं अवाध गति से निरन्तर चलता रहे। इसके लिये आपका सात्विक सहयोग अपेक्षित है। कृपया सहयोग देकर पुण्य अर्जित करें।

नोट—सहयोग स्वरूप कम से कम दस रुपये प्रदान करने वाले महानुभावों का नाम आगामी प्रकाशन में कृतज्ञतापूर्वक प्रकाशित किया जायेगा।

-: सहयोगाकांक्षी :-

हरिवंशलाल कुमार — प्रधान

रामप्रसाद गुप्त — प्रचार अधिष्ठाता

महावीर सिंह मुमुक्षु — मंत्री

मनोहर लाल आर्य — प्रचार मंत्री

वेद प्रकाश रस्तौगी — कोषाध्यक्ष

आर्यसमाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद

★ हमारे सहयोगी ★

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में निम्नलिखित महानुभावों ने निम्नलिखित राशि सहयोग स्वरूप प्रदान की है। आर्यसमाज रेलवे हरथला कालोनी मुरादाबाद सभी सहयोगियों का आभारी है। आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा। कम से कम दस रुपये सहयोग स्वरूप प्रदान करने वाले महानुभावों का नाम आगामी प्रकाशन में कृतज्ञतापूर्वक प्रकाशित किया जायेगा।

१.	डा० एस० पी० वर्मा लन्दन	१०१)
२.	श्री बावा सिंह मुरादाबाद	२१)
३.	" एस० के० शर्मा	२१)
४.	" देवसेन दुग्गल	२१)
५.	" जगदीश सिंह	२१)
६.	" इन्द्रजीत कम्बोज, लक्सर	२१)
७.	" सन्तोष कुमार अग्रवाल चन्दौसी	२१)
८.	" हरि लाल राम हापुड़	२१)
९.	" व्यासदेव बैम्बी	२१)
१०.	" हरिवंश लाल कुमार, प्रधान, आर्यसमाज	२०)
११.	" एस० बी० शरण	११)
१२.	" के० सी० श्रीवास्तव	११)
१३.	" लाखन सिंह धामपुर	११)
१४.	" जीत सिंह रावत मुरादाबाद	११)
१५.	" डी० एन० चौबे, हरथला कालोनी	११)
१६.	" योगेन्द्र कुमार, हरथला कालोनी	११)
१७.	" कर्णवीर वर्मा, बरेली	११)
१८.	" आर० पी० वर्मा	११)
१९.	" पी० रामचन्द्रन, ए० एस० टी० ई०	११)

२०	श्री गोविन्द शंकर जेतली, ए० एस० टी० ई०	११)
२१.	" ओम् प्रकाश अरोड़ा	११)
२२.	" एम० एल० सलूजा, हरथला कालोनी	११)
२३.	" दाशर्णेय लोकेश	११)
२४.	" सत्यप्रकाश कौल, कुरुक्षेत्र	११)
२५.	" पुरुषोत्तम स्वरूप भटनागर, कोटा	११)
२६.	,, योगेश्वर स्वरूप भटनाटर, कोटा	११)
२७.	श्रीमती स्वर्ण पुनहानी, नई दिल्ली	११)
२८.	श्री शंकर दास कटारिया, ज्वालापुर	१०)

कृपया आगामी प्रकाशन के लिए मुक्त हस्त से सहयोग प्रदान करें। धन्यवाद !

सभी दानदाताओं, सहयोगकर्त्ताओं एवं विज्ञापनदाताओं के आभारी हैं।

—: सहयोगाकांक्षी :—

हरिवंशलाल कुमार
प्रधान

महावीर सिंह 'मुमुक्षु'
मंत्री

वेद प्रकाश रस्तौगी
कोषाध्यक्ष

आर्यसमाज रेलवे हरथला कालोनी,
मुरादाबाद

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशकीय

मानव-मात्र का उपास्य यदि कोई है, तो निश्चय ही परब्रह्म परमात्मा ही है और उस उपास्य का निज एवं मुख्य नाम यदि कोई है तो निश्चय ही वह 'ओ३म्' ही है। दुःख है आज मानव ईश्वर की भांति उसके नाम को भी भुलाये बैठा है। तभी वह घोर अन्धकार में ठोकरें खा रहा है। यदि मानव को इस दुःखद स्थिति से त्राण पाना है तो, उसे ईश्वर के स्वरूप तथा निज नाम को ठीक तरह से जानकर, उसी की उपासना में संलग्न होना होगा। अन्यथा वह इसी प्रकार अन्धकार में ही ठोकरें खाता रहेगा। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए श्री यशपाल आर्यबंधु ने प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। आशा है पुस्तक आर्य जगत में यथोचित स्वागत पायेगी।

आर्यसमाज, रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद अपने सीमित साधनों से साहित्य-प्रचार के कार्य में जुटा है। आर्य जनता का सहयोग बना रहा तो और साहित्य सुमन भेंट कर सकेंगे।

विनीत :

महावीर सिंह 'मुमुक्षु'

मंत्री, आर्यसमाज,

रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद

॥ ओ३म् ॥

ओंकार महिमा

संसार का प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी नाम से ही जाना जाता है। इसीलिए लोक-व्यवहार की सिद्धि के लिए प्रत्येक पदार्थ का कुछ न कुछ नाम रखा जाता है। यदि ऐसा न किया जाये तो समाज का कार्य-व्यवहार चल ही नहीं सकता। इसी सिद्धांत के अनुसार मानव मात्र के उपास्य देव को भी किसी नाम से पुकारा जाना आवश्यक है। फिर वह नाम ऐसा होना चाहिये जो उसके गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुरूप हो। अर्थात् उस नाम से ईश्वर के किसी न किसी गुण, कर्म अथवा स्वभाव का का बोध होना आवश्यक है, तभी वह नाम सार्थक कहला सकता है। और यदि वह उसका बोधक नहीं तो वह नाम निरर्थक ही माना जायेगा। हम सांसारिक पदार्थों एवं व्यक्तियों के नाम प्रायः गुण कर्म स्वभाव के विपरीत भी रख दिया करते है और कभी-कभी निरर्थक नाम भी रख दिया करते हैं जैसे किसी निरक्षर भट्टाचार्य का नाम विद्या सागर रख दिया जाये अथवा किसी निर्धन का नाम लक्ष्मी पति रख दिया जाये। ईश्वर का वेद-प्रतिपादित ऐसा कोई नाम नहीं कि जो उसके गुण, कर्म स्वभाव के अनुकूल एवं सार्थक न हो। यह ईश्वर के नामों की विशेषता है।

अनन्त नाम—

ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव अनन्त हैं अतः उन गुण, कर्म, स्वभाव के द्योतक नाम भी अनन्त ही हैं। ईश्वर के प्रत्येक नाम से उसके किसी न किसी गुण, कर्म स्वभाव का वोध होता है। महर्षि दयानन्द ने अपने लोक-विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के सौ नामों को गिना कर लिखा है कि—"इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म, स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म, स्वभाव का एक-एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं।" वेद में आया है कि 'एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्ति" अर्थात् एक ही ईश्वर को विद्वान मेधावी जन वहुत नामों से पुकारते हैं।

निज नाम—

ईश्वर के अनन्त नाम हैं यह हम पूर्व लिख चुके हैं किन्तु उसका अपना कोई मुख्य अथवा निज नाम भी होना चाहिये। ईश्वर के कुछ नाम ऐसे भी हैं कि जो सांसारिक पदार्थों के भी नाम हैं। यथा अग्नि, वायु, इन्द्र आदि-आदि। पर उसका एक नाम ऐसा भी है जिसे हम उसका निज नाम कह सकते हैं। यही उसका मुख्य नाम है। योगदर्शन हमें ऐसा नाम दर्शाता है यथा— "तस्य वाचकः प्रणवः।" (योग १/२८) अर्थात् उसका वाचक ओ३म् है। सव वेदादि सत्य शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और

निज नाम ओ३म् ही बताया गया है। ईश्वर स्वयं अपना नाम ओ३म् उद्घोषित कर रहा है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय मंत्र १५ और १७ में तथा अध्याय २ के मंत्र १३ में ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यथा—"ओ३म् खं ब्रह्म।" "ओं प्रतिष्ठ।" कठोपनिषद् में आया है कि—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीभि ओ३म् इत्येतत्॥ अर्थात् सारे वेद जिस पद का प्रतिपादन करते हैं, सारे तप साध्य रूप में जिस पद का वर्णन करते हैं, जिस पद का इच्छा से तपी जन ब्रह्मचर्य धारण करते हैं उस पद को मैं संक्षेप से कहता हूं, वह पद ओ३म् है।

ओ३म् नाम इसलिये प्रधान तथा सर्वोत्तम है क्योंकि इसके केवल परमेश्वर का ही बोध होता है, किसी अन्य का नहीं। जबकि अग्नि, इन्द्र आदि से प्रकरणानुसार ईश्वर और सांसारिक नामों दोनों का बोध होता है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का कथन है कि 'ओ३म् यह तो केवल परमात्मा का ही नाम है और अग्नि आदि नामें से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है।" तथा "जो ईश्वर का ओंकर नाम है सो पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं उनमें ओंकार सबसे उत्तम है।"

"ओ३म्" के महत्व के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में भी बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। उसके अनुसार वेदों को तपाया गया उन तपाये हुओं से तीन शुक्र उत्पन्न हुए ऋग्वेद से भूः यजुर्वेद से भुवः और सामवेद से स्वः। फिर उन तीनों को तपाया

गया, उन तपाये हुओं से तीन वर्ण उत्पन्न हुए, अकार, उकार और मकार, इन तीनों को इकठ्ठा किया गया, तब "ओ३म्" यह शब्द बना।

सब नामों के अर्थ—

ओ३म् नाम इसलिए भी सर्वोत्तम है कि इस एक नाम में ईश्वर के सभी नामों के अर्थों का बोध हो जाता है। इसमें महर्षि का निम्न वाक्य प्रमाण है। महर्षि लिखते हैं कि—"जो अकार, उकार मकार के योग से 'ओ३म्' यह अक्षर सिद्ध हुआ है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं।" (पंच महायज्ञ विधि) इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि लिखते हैं कि "ओ३म् यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि और मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।"

सब गुणों का समावेश—

'ओ३म्' नाम ऐसा सर्वोत्कृष्ट है कि इसमें परमेश्वर के सभी गुणों का समावेश हुआ है। महर्षि कृत उपदेश मंजरी में स्पष्ट उल्लेख है कि—"ओ३म् यह ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट नाम है

क्योंकि इसमें उसके सब गुणों का समावेश है।" ईश्वर का इस ओ३म् नाम जैसा पूर्ण तथा उत्तम नाम अन्य कोई नहीं। इस

ओ३म् नाम के साथ किसी अन्य विशेषण लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि इस एक नाम में ईश्वर के सभी विशेषण समाविष्ट हैं।

सुवाच्य नाम—

ईश्वर के जितने भी नाम हैं, ओ३म् उन सबमें सरल और सुवाच्य है। अ, उ तथा म् तीनों का उच्चारण अनपढ़ और महा-मूर्ख तो क्या तुतले और गूंगे तक भी सरलता से कर सकते हैं। जबकि अन्य नामों का शुद्ध उच्चारण उनसे सम्भव नहीं। छोटे तुतले बच्चे 'राम' कृष्ण आदि नामों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। जबकि बहुत से ऐसे वयसक हैं कि जो 'शिव' तथा 'शंकर' के स्थान पर 'सिव' तथा 'संकर' ही बोलते हैं। अंग्रेज फ्रेंच लोग खुदा का उच्चारण नहीं कर सकते क्योंकि उनकी भाषा में 'ख' है ही नहीं। पर ये सब 'ओ३म् का उच्चारण अति सरलता से कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में पण्डित अयोध्या प्रसाद जी वैदिक रिसर्च स्कालर लिखते हैं कि—' संसार में जितनी भी भाषायें हैं उन सब भाषाओं के अक्षर बिना 'अ' की सहायता के बोले नहीं जा सकते फिर उन भाषाओं में कितने ही अक्षर भी हैं जिनका उच्चारण अत्यन्त कठिनता से होता है और कितने ही मनुष्य ऐसे भी हैं जिनसे आजीवन भी वे अक्षर उच्चारित नहीं हो पाते। इग्लैंड के रहने वालों से यदि विशुद्ध 'ख' अक्षर उच्चारण करवावें तो वे नहीं कर सकते, इंगलैंड के पड़ौसी फ्रांस से यदि 'ट, ठ, ड, ढ, ण' इस ट वर्ग का उच्चारण करावें तो वे कहेंगे कि किस

विपत्ति में हम पड़ गये। किन्हीं महानुभावों से विशुद्ध 'र' का उच्चारण नहीं हो सकता। कोई 'श' 'ष' 'स' का उच्चारण नहीं कर सकते। बंग भाषा-भाषी महानुभाव 'क्ष' अक्षर नहीं वोल सकते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न भिन्न भाषाओं के अभ्यासी भिन्न-भिन्न अक्षरों के वोलने में अनभ्यस्त हैं। परन्तु किसी भी देश के निवासी, किसी भी भाषा के अभ्यासी व्यक्ति 'अ', 'उ' और 'म्' इन तीन अक्षरों के वोलने में कभी द्विविधा में नहीं पड़ेंगे, अपितु प्रसन्नता पूर्वक उन्हें आसानी से वोल सकेंगे।

यह तो रही पढ़े लिखे और भिन्न-भिन्न देश के भाषियों की वात, अब उन अवोध शिशुओं की ओर भी क्षणिक दृष्टिपात करें, जो जन्म लेने के साथ ही अं आ, आउ, उ और म् म आदि स्वरों के उच्चारण के साथ माँ की गोद में लिपटे हुए रोते हैं। तथा माता भी उस वच्चे को अं, अ के उच्चारण से लोरियां करती हुई थपथपा कर उसे चुप कर देती है। मां और वच्चों की इस स्वाभाविक 'ओ३म्' शव्द की पवित्र प्रणाली को किसी ने भी निर्माण नहीं किया और न ही किसी ने शिक्षा ही दी अपितु स्वभावतः ही उनके मुख से इस ओंकार के अक्षरों का उच्चारण न केवल आज से ही अपितु सृष्टि के आदि काल से ही होता चला आ रहा है। वच्चों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर का सरलता पूर्वक उच्चारण करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार संसार की जितनी भी भाषायें हैं, उनमें 'अ' 'उ' और 'म्' ये तीन अक्षर ही ऐसे सरल और उपयुक्त मिलेंगे जिनका विशुद्ध उच्चारण सहज ही सव कर सकते हैं। इंगलिश भाषा में ईश्वर को गौड (God) कहते हैं परन्तु अरव निवासी (God) शव्द का अच्छे प्रकार उच्चारण नहीं कर सकते क्योंकि अरवी

भाषा में 'ग' और 'ड' का सर्वथा अभाव है। ठीक इसके विपरीत अंग्रेज या फ्रैंच लोग 'खुदा' शब्द का उच्चारण नहीं कर सकते। हिन्दू समाज में प्रभु के अर्थ में प्रयुक्त प्रसिद्ध 'राम' शब्द को भी सब नहीं बोल सकते। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि मानव समाज ब्रह्म के अर्थ में 'ओ३म्' शब्द ही सरलता पूर्वक व्यवहार में ला सकता है।" (ओंकार व्याख्या से)

वस्तुत: 'ओ३म्' ऐसा सरल है, ऐसा कोमल है कि किसी भी देश का वासी, वह अपढ़ हो चाहे पण्डित, बालक हो चाहे वृद्ध उसका शुद्ध उच्चारण सरलता से कर सकता है। प्रभु ने अपना 'ओ३म्' नाम बता कर मानव पर बड़ा उपकार किया है। स्वामी सत्यानन्द जी के शब्दों में "दांत मुंह में न हों, जीभ कट गई हो, तो तुतले हकले और गूंगेपन में भी परमात्मा की भक्ति से कोई वंचित नहीं किया गया। ओ३म् उच्चारण में तो दांत और जीभ आदि को हिलने का काम ही नहीं है, गला ठीक होना चाहिए, इसमें केवल कण्ठ का काम है। कण्ठ खोल कर लम्बे ओ की ध्वनि को गुंजाओ और अन्त में होंठ बन्द कर दो, अथवा 'ओ' ध्वनि अपने आप शान्त होने दो, सांस समाप्त होने के समय 'ओ' की ध्वनि नाक में धीमी-धीमी गूंजने लग जावेगी, इस समय 'ओम्' का उच्चारण पूर्ण हो जावेगा। किसी मनुष्य का कण्ठ तभी बन्द होता है, जब उसके जीवन के पल समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य के अन्त काल तक उसका गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवन के अन्तिम पल पर्य्यन्त परमात्म देव के पवित्र नाम की डोर पकड़ सकता है, भक्त बन सकता है और स्वर्गारोहण कर सकता है।" (ओंकार उपासना से)।

उपरोक्त विवरण से यही निकलता है कि ओम् जैसा

सुवाच्य तथा सरल नाम अन्य कोई नहीं।

अविकारी तथा अव्यय—

ओम् को छोड़कर ईश्वर के जितने भी अन्य नाम हैं, वे सब विकारी हैं। केवल ओम् ही एकमात्र ऐसा नाम है कि जो अविकारी है। यह इसलिए कि यह परमात्मा का निज नाम है। और परमात्मा भी चूंकि अविकारी है तो फिर उसका नाम भी अविकारी अर्थात् विकार-रहित ही होना चाहिए। व्याकरण की दृष्टि से ओम् शब्द अव्यय है। स्मरण रहे कि अव्यय उसको कहते हैं कि जो विभक्ति, लिंग और वचन के परिवर्तन में न आने पावे। ओम् से भिन्न परमेश्वर के जितने भी नाम हैं वे सारे विभक्ति, लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु ओम् ऐसा शब्द है कि जो हर दशा में अपरिवर्तनशील रहता है।

काव्य तीर्थ श्री पं० शिवशंकर शर्मा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओंकार निर्णय' में लिखते हैं कि 'ईश्वर वाचक जितने शब्द हैं, वे सब सलिंग हैं। कोई शब्द स्त्रीलिंग है, कोई पुल्लिंग है और कोई नपुंसकलिंग वाची है। वेदों में भी अदिति, भूमि आदि ईश्वर के स्त्रीलिंग वाची नाम भी हैं। इन्द्र, वरुण, आदि पुल्लिंग हैं। ब्रह्मन् शब्द नपुंसक लिंगी है। अर्थात् ये सभी शब्द विकार-युक्त हैं। परन्तु यह 'ओम्' शब्द सर्वथा निर्विकार है. क्योंकि यह अव्यय है। "सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्। तीनों लिंगों में, और सब विभक्तियों में और सब वचनों में जिसका रूप समान हो, अर्थात् जिसमें

विकार न हो, उसको अव्यय कहते हैं। अव्यय के साथ जो विभक्ति आती है, उसका लोप हो जाता है। इसलिये ब्रह्म वाचक 'ओम्' शब्द भी ब्रह्म के समान सर्वथा निर्विकार है। परन्तु ब्रह्म वाचक अन्य सब शब्द विकार-संयुक्त हैं। यही ईश्वर का यथार्थ नाम है। इसी कारण से ईश्वर के जितने अन्य नाम हैं, वे प्रायः सभी किसी न किसी अन्य अर्थ के सूचक भी हैं, परन्तु 'ओम्' शब्द ईश्वर से भिन्न और किसी का भी सूचक नहीं।"

ईश्वर के निज नाम 'ओम्' का द्विवचन और बहुवचन न होना इसी बात का द्योतक है कि 'ओम्' अर्थात् ईश्वर एक ही है, अनेक नहीं, वह विकार-रहित है विकारी नहीं, वह विभक्ति का विषय नहीं अर्थात् वह विभक्त नहीं हो सकता।

वेद मंत्रों के आदि में ओम्—

वैदिक ऋषियों ने वेद मंत्रों के आदि और अन्त में ईश्वर के जिस नामोच्चारण का विधान किया है, वह भी परम पवित्र ओम् ही है। मनुस्मृति २/७४ में स्पष्ट उल्लेख है कि वेद के प्रत्येक मंत्र के आदि और अन्त में प्रणव (ओंकार) का उच्चारण किया जाये। यथा—"ब्रह्मणः कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।" इतना ही नहीं मनु जी तो मंत्र का ओंकार रहित पठन-पाठन भी व्यर्थ हुआ सा बताते हैं। यथा—स्रवत्यनोऽक्ष्तं पूर्वं परस्ताच्च विशर्यते।" अर्थात् जिस वेदपाठी ने प्रथम 'ओम्' शब्द का उच्चारण नहीं किया, उसका ओंकार सहित पठन-पाठन बिलकुल नष्ट हो जाता है और जिसने पश्चात् ओंकार का उच्चारण नहीं किया उसका अध्ययन भी नष्ट हो जाता है। गोपथ ब्राह्मण भी ओंकार के

बिना वेदाध्ययन का सर्वथा निषेध करता है । यथा—"न मामनीरयित्वा ब्राह्मणः ब्रह्म वेदयुः । यदि वेदयुर ब्रह्म स्यात् ॥ (गोपथ १-२-३) अर्थात् मुझको (ओंकार को) उच्चारण किये बिना वेद को नहीं पढ़े अन्यथा वह पढ़ना अवेद हो जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में भी यही बात प्रकारान्तर से कही गई है। यथा—"तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतुणानि । एवमोंकारेण सर्वा वाक् संतुण्णा । ओंकार एवेदं सर्वं । ओंकार एवेदं सर्वम् ।" (छान्दो, २-२३-३) अर्थात् जैसे सब पत्ते वृक्ष से सम्बद्ध हैं वैसे ही ओंकार से वेदवाणी सम्बद्ध है। ओंकार वाच्य ब्रह्म ही सब कुछ है।

वेद मंत्रों के आदि और अन्त में ईश्वर के निज नाम ओम् को छोड़कर अन्य कोई भी नाम नहीं बोला जाता। वेदमंत्रों को तो छोड़िये पौराणिक तंत्रों के पूर्व भी ओम् शब्द ही का उच्चारण किया जाता है न किसी ईश्वरवाची पौराणिक नाम का। वेदमंत्रों के आदि और अन्त में ब्रह्म वाची ओंकार का उच्चारण इस बात को भी प्रमाणित करता है कि वेद का आदि से अन्त तक ब्रह्म ही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। जैसा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का भी कथन है कि—"अत्र चत्वारो वेद विषयाः सन्ति। विज्ञानकर्मोपासना ज्ञानकाण्ड भेदात्...अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात् ।" अर्थात् चारों वेदों के विषय विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान-काण्ड के भेद से चार हैं तथापि सभी वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ईश्वर ही है। ब्रह्म-विद्या वेद के आदि और अन्त में ब्रह्मवाची ओंकार का उच्चारण ओम् नाम की अन्य नामों से श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। ओंकार को समस्त मंत्रों का सेतु कहा गया है तथा मनोवांच्छित फल की प्राप्ति के लिए प्रत्येक

मंत्र को ओम् के साथ उच्चारण किया जाता है। यथा—"मंत्राणां प्रणवः सेतुः। मांगल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकामप्रसाधनम्। ओंकारः परमं ब्रह्म सर्वमंत्रेषु नायकम्।"

शास्त्रों ने ओम् की बड़ी महिमा गाई है। उनके अनुसार "ओमेति ब्रह्म। ओमितीद ँ सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रवयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओं ँ शोभिति शस्त्राणि श ँ सन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्म प्रसौति। ओमित्याग्निहोत्र मनुजानाति ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति।" (तै० शि ८) अर्थात् ओम् यह ब्रह्म है। ओम् यह सब कुछ है। ओम् यह आज्ञा मानना है। ओम् अंगीकार का वाचक है। ओम् कहने पर (ऋत्विज) मंत्र सुनाते हैं। ओम् शोम् कह कर शास्त्रों (ऋग्वेद के प्रार्थनामन्त्र विशेष) को पढ़ते हैं। ओम् कह कर (सोमयज्ञ में) अध्वर्यु यजुर्वेदी प्रतिगर (प्रोत्साहक मन्त्र विशेष) पढ़ता है। ओम् कह कर ब्रह्मा अनुज्ञ देता है। ओम् कह कर अग्निहोत्र की अनुज्ञा देता है। वेद अध्ययन करने वाला ब्राह्मण ओम् उच्चारण करता हुआ कहता है मैं ब्रह्म (वेद, को प्राप्त होऊं और इस प्रकार वह ब्रह्म को अवश्य पा लेता है। और ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। (मा० १) अर्थात् यह सब कुछ ओम् अक्षर है यह जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्यत् है सब उसकी व्याख्या है और जो कुछ तीनों कालों से ऊपर है वह भी ओंकार ही है।

जीवनारम्भ में ओम्—

'ओम्' नाम की एक और विशेषता भी है जो उसके महत्व

की परिचायक है। वैदिक रीति के अनुसार जातकर्म संस्कार में पिता सोने की सलाई से नवजात शिशु को मधु चटाता है और उसकी जिह्वा पर ओम् लिखता है। यह क्रिया जहां ओम् नाम के महत्व को प्रकट करती है वहां इस बात की भी द्योतक है कि मानव-जीवन का प्रारम्भ ओम् से ही होना चाहिये। वैसे बालक भी ऊंआं-ऊंआं की ध्वनि में ओम् का ही उच्चारण करता प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज लिखते हैं कि—"जन्म से ही बालक की जीभ पर ओम् लिख कर वैदिक पिता स्वसन्तान को इस भाव से प्रभावित करता है कि मेरे चित्त के चांद तेरी जीभ पर पहले-पहल विराजने वाला शब्द 'ओम्' है, तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो वह 'ओम्' है। वैदिक माता-पिता अपने प्यारे पुत्री-पुत्र को पहले-पहल कोई सम्पत्ति कोई धन, और कोई वस्तु देते हैं, कि जो बच्चे को दूध देने से भी प्रथम देनी लिखी है, तो वह आत्मिक सम्पत्ति है—परमात्मा का निज नाम ओम्।···पुत्र-पुत्री की जिह्वा पर सबसे प्रथम ओम् का यह भी तात्पर्य समझना चाहिए कि बच्चे को सबसे पहले 'ओम्' शब्द ही सिखाना उचित है। ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओम्' अतीव कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, ओ, ओ तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है और वह भी बच्चे के लिए कोई कठिन काम नहीं। उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिनकी सन्तान बाल्यकाल से आस्तिक भाव के संस्कारों से रंगी जाय, वह सन्तान भी पुण्यवान् है जिसको पैतृक सम्पत्ति की भांति ईश्वर की भक्ति, ईश्वर नाम माता-पिता से प्राप्त हुआ है। माता की ओर से इससे बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु

नहीं और यह पितृऋण का बड़ा भाग है, जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है।" (ओंकार उपासना से)

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव-जीवन के आरम्भ में जो अक्षर बालक की जीभ पर लिखे जाते हैं उनका अपना विशेष महत्व है और इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये प्रभु के निज नाम ओम् को ही चुना गया है।

जीवनान्त में ओम्—

शास्त्रों में मानव-जीवन के आरम्भ में ही केवल ओम् के उच्चारण का विधान नहीं जीवनान्त में भी ओम् ही के स्मरण की बात कही गई है। गीता के आठवें अध्याय के श्लोक १३ में इस बात का उल्लेख है कि—ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मा-मनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ अर्थात् जो पुरुष ओम् इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप परमात्मा को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। यहां ओम् अक्षर के उच्चारण और चिन्तन की बात क्यों कही गई है? यह इसलिए कि ओम् शब्द ऐसा सरल और सुवाच्य है कि अन्तिम श्वास तक मनुष्य इसका सरलता में उच्चारण कर सकता है। किसी भी मनुष्य का कण्ठ तभी बन्द होता है कि जब उसके जीवन के अन्तिम क्षण आने को होते हैं। मनुष्य के अन्त काल तक उसका गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवन के अन्तिम श्वास, अन्तिम पल पर्य्यन्त परमात्म देव के परम पवित्र नाम की डोर पकड़ सकता है। और वह नाम है ओम्।

जीवनान्त में ओम् के चिन्तन का विशेष महत्व है। क्योंकि अन्त समय में जैसी मति होती है, वैसी ही गति भी होती है। इसलिए भक्त पुकार-पुकार कर कहता है कि अन्त समय में हे जगदीश, मुझको तेरा ही सुमरिण तेरा ही ध्यान हो। जीवनान्त के समय ध्यान प्रभु स्मरण में नहीं रहा तो उसकी जीवन-साधना ही व्यर्थ जाती है। तभी कवि कहता है कि—

गर मरते हुए लव पर न तेरा नाम आयेगा।
तो मैं मरने से वाज आया मेरे किस काम आयेगा?

इसलिए—उजाले अपनी यादों के हमारे साथ आने दो।
न जाने किस गली में ज़िन्दगी की शाम आ जाये॥

तभी चेतावनी दी गई है कि—

जीवन की घड़ियाँ यूं ही न खो, ओम् जपो, ओम् जपो। साधक तो प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि हमारे जीवनरूपी पुस्तक के हर पन्ने का शीर्षक ही तुम्हारा नाम ओंकार ही हो—

होवे तुम्हारा नाम ही उनवाने हर वरक।
औराक जिन्दगी को उलट दें कहीं से हम॥

पर ऐसी साधना तभी सम्भव है कि जब हम इसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि हम लोग ओम् के जपकी निरन्तर साधना करें। हमें ओम् की ध्वनि को अपने श्वासों की झंकार बना लेनी होगी। हमारे जीवन

की सफलता इसी में है कि ओम् हमारे श्वासों की माला बन जाये। यदि हम ऐसा न कर सके तो हमारा जीवन व्यर्थ ही गया समझो।

जीवन सितार बजा लो—

एक वार एक सितार वादक आर्यसमाज के किसी उत्सव पर पहुँच गया और प्रधान जी से प्रार्थना करने लगा कि मुझे दस मिनट सितार-वादन के लिए प्रदान करें। प्रधान जी ने उसे दस मिनट का समय सितार-वादन के लिए दे दिया। वह सितार-वादक मन्च पर आया और अपनी सितार की कीलियां मरोड़ने लगा। कभी एक कीली को कसता तो कभी दूसरी को और इसी प्रकार समय बीतता गया, यहां तक कि दस के दस मिनट उसे कीलियां मरोड़ने में ही लग गये पर सितार न बजा और अन्त में दस मिनट का निर्धारित समय बीत जाने पर प्रधान जी ने घंटी बजा दी और मन्च से हट जाने का निर्देश दिया। हमारी भी यही स्थिति है। उस परम पिता परमात्मा ने भी हमें जीवन रूपी सितार दिया था बजाने के लिए। हम भी इसकी कीलियां ही मरोड़ते रहे अर्थात् जीवन भर इसे संवारने सजाने में ही लगे रहे और समय बीतता गया। यहां तक कि मौत की घंटी बज उठी और संसार रूपी रंगमंच से हट जाना पड़ा। पर जीवन सितार न बजा। तभी सन्त कवि कबीर दास की वाणी मुखरित हो उठी कि—

कबिरा यंत्र न बाजई, टूटि गई सब तार।
यंत्र बेचारा क्या बजे, चले बजावन हार॥

इसीलिए कहा गया है कि —

स्वांस-स्वांस पर ओम् जपो, वृथा स्वांस मत खोय ।
न जाने या स्वांस को आवन होय न होय ॥

हमारा एक-एक श्वास कीमती है। पर हम हैं कि इसकी कीमत जानते ही नहीं। हमारी स्थिति तो उस मछियारे की सी है कि जो नित्य प्रातः फटने से पहले घर से मछलियाँ पकड़ने निकल जाता था और सबेरा होते-होते वापिस बाजार में बेचने को आ जाता था। एक दिन वह मछियारा घर से रोज की भांति निकल पड़ा। मार्ग में उसे एक थैला मिला जिसमें कुछ पत्थर जैसे छोटे-छोटे कंकड़ थे। मछियारे ने वह थैला उठा लिया और समुद्र की ओर चल पड़ा। वहां जाकर उसने अपना जाल फैला दिया और थैला खोलकर देखने लगा। रात्रि के धुधंलके में उस थैले में पड़े पत्थरों को साधारण पत्थर समझ कर एक-एक करके समुद्र में फैंकने लग गया और उससे उठने वाली लहरों को देखकर आनन्द लेने लगा। धीरे-धीरे थैला खाली होता गया। यहां तक कि थैला आधा रह गया। इस बीच में ऊषा अपनी किरणें बिखेरनी लगी और उन किरणों की रोशनी में पत्थर चमकने लगे। पत्थरों की चमक देखकर उसने पत्थर समुद्र में फैंकने बन्द कर दिये। और मछिलयों के साथ-साथ उन पत्थरों को लेकर बाजार में जा पहुँचा। वहाँ उसने पत्थरों को बेचने के लिए रख दिया। सौभाग्य से एक जौहरी भी मछलियां खरीदने आया हुआ था, उसकी दृष्टि उन पत्थरों पर जो वास्तव में रत्न थे, पड़ी तो मछियारे से पूछने लगा कि इन पत्थरों के क्या लोगे ? मछियारे ने कहा कि आप ही सोच समझ के दे दें। जब जौहरी

ने उसे उनका मूल्य दिया तो वह दग रह गया, उसे वड़ा पछतावा हुआ कि अपने ही हाथों से बेशकीमती रत्नों को समुद्र में फैंक आया । क्या हम भी अपने श्वास रूपी बेशकीमती रत्नों को संसार सागर में यूं ही व्यर्थ नहीं फैंक रहे ? और जब जीवन बीत जाता है तो पछतावा होता है। उस समय इन्द्रियां इतनी शिथिल हो चुकी होती हैं कि कुछ बन ही नहीं पाता। इसलिए कहा गया है कि—

कर जवानी में इबादत काहली अच्छी नहीं,
जब बुढ़ापा आता है कुछ बात बन पड़ती नहीं ।

मजा तो तब है कि हमारा जीवन सितार जवानी में ही बज उठे। उसका हर तार ओम् की झंकार से झंकृत हो उठे। हमारे हृदय-मन्दिर से ओम्-ओम् की पुकार सुनाई देने लगे, तभी हमारे जीवन की सार्थकता है। हमारा हर श्वास प्रभु के निज नाम ओम् की माला बन जाये। हमारा हर क्षण उसी के चिन्तन में लगे। हमारी यह स्थिति हो कि जिसके लिए कवि ने लिखा है कि—

सोऊं तो सपने मिले जागू तो मन मांहि
लोचन रत्ता सिद्ध प्रभु बिछुरत कबहुं नांहि ।।

पाप विनाशक—

प्रभु का चिन्तन पापों का मोचन करने वाला है । उसके चिन्तन मात्र से पाप ऐसे दग्ध होते हैं कि जैसे पुरानी घास पर चिनगारी पड़ जाने से नष्ट हो जाती है। कहा भी है कि—

जब ही नाम हृदय परयो भयो पाप को नाश
जैसे चिनगी आग की पड़ी पुराने घास ।।

ईश्वर परम पवित्र है। उसका निज नाम ओम् भी ऐसा ही पवित्र है। ईश्वर विकार रहित है। उसका निज नाम ओम् भी विकार रहित अर्थात् अविकारी है। ऐसे परम-पवित्र तथा विकार-रहित भगवद् नाम का स्मरण मन के विकारों को दग्ध कर निर्मल बना देता है। ओम् के जप से मन की चंचलता मिट जाती है और वह एकाग्र होकर प्रभु के प्रेम में निमग्न हो जाता है। पाप वासनाओं को दग्ध करने का इस ओंकार-उपासना से बढ़कर कोई अन्य साधन संसार अभी तक खोज नहीं पाया। काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ओंकार-उपासना एक अमोघ अस्त्र है। आत्मिक उन्नति का यह अचूक साधन है। जब कभी भी विषय-विकार मन को सताने लगें और मन व्याकुल हो उठे तत्काल ओम् का जप प्रारम्भ कर दीजिये और फिर देखिये कि उसका कितना शीघ्र परिणाम निकलता है। मन में उठे विषय-विकारों की यह अचूक औषधि है। कवि का यथार्थ कथन है कि—

विषय का विषधर जब डसे, तू ओम् जड़ी को चबा।
है नाग दमन यह औषधि तू ढूंढने और न जा।।

सन्तकवि तुलसी दास ने राम नाम की महिमा बखानते हुए कहा है कि—

तुलसी 'रा' अस कहत ही निकसत पाप पहाड़।
फिर आवन पावत नहीं देत मकार किवाड़।।

अर्थात् राम शब्द के 'रा' के बोलते ही मुख से पाप के पहाड़ निकल पड़ते हैं और फिर वे भीतर नहीं घुस पाते क्योंकि 'म्' अर्थात् मकार कपाट लगा देता है। उनकी मान्यता है कि 'रा' कहने से होंठ खुलते हैं और 'म' के कहने से बन्द हो जाते हैं। अतः 'मकार के उच्चारण के साथ बाहर निकले पाप फिर वापिस नहीं घुस सकते क्योंकि तब होंठ बन्द हो जाते हैं। पर यदि व्याकरण की दृष्टि से इसे परखा जाये तो तुलसी की यह बात सही नहीं उतरती क्योंकि राम अकारान्त शब्द है। अन्त में 'अ' होने से मुख तो फिर खुल जाता है। अतः कवि की यह कल्पना कि फिर पाप उसमें घुस नहीं सकते, यथार्थ नहीं बैठती। यद्यपि पापों के मुख से निकलने और पुनः घुसने की बात एक कवि की कल्पना ही है तथापि यह बात राम पर न घटकर ईश्वर के निज नाम ओम् पर घटती है। ओम् शब्द राम की भांति अकारान्त नहीं। ओम् शब्द में प्रयुक्त मकार हलन्त है जबकि राम शब्द अकारान्त है। अतः तुलसी के इस दोहे को यदि शुद्ध व्याकरण सम्मत स्वरूप में प्रस्तुत करना हो तो इसे इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

तुलसी 'ओ' अस कहत ही निकसत पाप पहाड़।
फिर आवन पावत नहीं देत मकार किवाड़ ॥

एकमात्र जानने योग्य वस्तु—

संसार में वैसे तो जानने योग्य सभी कुछ है, पर यदि समस्त संसार को भी जान लिया जाये किन्तु उस अविनाशी अक्षर ब्रह्म को न जाना तो मानों कुछ भी नहीं जाना। इसी लिये यह कहा

गया है कि जानने योग्य कोई वस्तु है तो वह अविनाशी परब्रह्म परमात्मा है जिसे अक्षर भी कहा गया है। ओम् अक्षर है। उस अविनाशी अक्षर के लिए कठोपनिषद् में आया है कि "एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम्। एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।" (२/१६) इसमें यमाचार्य नचिकेता को उपदेश करते हैं कि ओम् अक्षर ही सबसे महान् और अविनाशी ब्रह्म है, यही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य, सबसे बढ़कर जानने योग्य और ज्ञान की अन्तिम काष्ठा सीमा है। सारे साधन इसके ज्ञान के लिए ही अनुष्ठान करने आवश्यक होते हैं। जैसे मार्ग का सब सामान उद्देश्य तक पहुँचने के लिए ही होता है, ऐसे ही शरीर मन और इन्द्रिय यह सब पदार्थ 'ओम्' को जानने के लिए ही है। जैसे रसोई घर की सारी सामग्री का प्रयोजन उदरपूर्ति ही है, ऐसे ही समस्त साधनों की प्राप्ति का प्रयोजन भी परमात्मज्ञान ही है। जो मनुष्य इस अक्षर को जान जाता है अर्थात् जिसको परमात्मा का ज्ञान हो जाता है, उसकी जो-जो इच्छा होती है, वह सब पूरी हो जाती है। 'ओम्' को जान लेने के बाद किसी पदार्थ की इच्छा का होना असम्भव सा है, क्योंकि लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व ही मार्ग के सब समान दृष्टिगोचर हो चुकते हैं, कोई ऐसा पदार्थ शेष नहीं रहता जिसकी कामना बनी रहे। इसी ओम् अक्षर को सृष्टि के आरम्भ से ही लोग 'परम अक्षर' प्रभु का सर्वश्रेष्ठ नाम कहते चले आये हैं। इस 'ओम्' के ज्ञान से सब प्रकार का कष्ट अपने आप नष्ट हो जाता है। सब सुखों का मूल यही ओम् है। जो लोग 'ओम्' के उपासक हैं, उनको कष्ट क्लेश शोक भय से कोई संसर्ग नहीं रहता। जिस प्रकार जहां सूर्य का प्रकाश हो, वहां किसी तरह अन्धकार हो नहीं सकता, ऐसे ही जिस किसी ने 'ओम्' को जान लिया, उसको

अविद्या किसी भांति नहीं हो सकती। जहां अविद्या नहीं, वहां दुःख कैसे हो सकता है ? अविद्या से रागद्वेष में प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति अर्थात् पुण्य पाप कर्मों के करने से पुण्य पाप के संस्कार होते हैं, पुण्य पाप संस्कारों से जन्म मरण होता है, जो महादुःख है। जहां अविद्या नहीं वहां रागद्वेष नहीं हो सकते, जहां रागद्वेष नहीं, वहां प्रवृत्ति पाप-पुण्य कर्मों का अनुष्ठान और तज्जन्य संस्कार नहीं, जहां पाप-पुण्य के संस्कार नहीं, वहां जन्म-मरण रूप दुःख कैसे उत्पन्न हो सकता है ? **अतः एक 'ओम्' के स्वरूप को यथार्थ रूप से जान लेना सब दुःखों से छूटने का उपाय है।** (उपनिषद् प्रकाश, पृष्ठ ६२-६३)

ओम् नाम का आधार—

सन्त कवि तुलसी दास ने राम नाम के सम्बन्ध में कहा है कि—

"कलियुग केवल नाम आधारा, सुमिर-सुमिर नर उतरहिं पारा।"

पर ईश्वर का निज नाम ओम् केवल कलियुग का आधार नहीं, वह हर काल और हर अवस्था में आधार है। ओम् का नाम सब आधारों का आधार है। उस आधार जैसा अन्य कोई आधार नहीं। उस आधार के अवलम्बन के पश्चात् अन्य अवलम्बनों की आवश्यकता रह ही नहीं जाती। कठोपनिषद् बतलाती है कि— **एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।** (२/१७) अर्थात् इस ओम् का आलम्बन ही श्रेष्ठ है, यही आलम्बन उत्कृष्ट है। इस आलम्बन को जान के

ब्रह्मलोक की महिमा को प्राप्त करता है। वस्तुतः ओम् नाम निर्बलों का बल है असहायों का सहारा है, अनाथों का नाथ है, निराश्रितों का आश्रय है। भवसिंधु पार करने की अद्भुत अनोखी नौका है, भवबंधन काटने का दिव्य अस्त्र है। अतः इसी एक सहारे का अवलम्बन कर भवसिंधु को तरा जा सकता है, भव-बंधन काटे जा सकते हैं पर तभी कि जब हम पूर्ण मनोयोग एवं अर्थ की भावना करते हुए ओम् नाम को अपने जीवन का आधार बनायेंगे।

ओम् नाम की महिमा के सम्बन्ध में एक कथानक का स्मरण हो आता है। एक मुनि के आश्रम में एक अन्य ऋषि पधारे। योगक्षेम पूछने तथा जलपान आदि के पश्चात् उस आश्रम के मुनि ने आगन्तुक ऋषि से कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की। ऋषि ईश्वर के निज नाम 'ओम्' की महिमा बखानने लगे। ओम् नाम की महिमा बखानते हुए ऋषि बोले कि ओम् नाम भवबंधन को काटने वाला दिव्य अस्त्र है। ऋषि अभी उपदेश कर ही रहे थे कि उस आश्रम का एक तोता बोल उठा—'असत्य। असत्य'। दोनों ऋषि आश्चर्यचकित हो तोते की बात सुनने लगे। तोता भावावेश में था। आखिर वे तोते से बोले कि तुम ऐसा किस आधार पर कह रहे हो? तोता बोला कि यह मेरे जो स्वामी आश्रम के पति हैं नित्य प्रातः-सायं ओम् नाम का स्मरण किया करते हैं। प्रातः सायं जब यह ओम् नाम की धुन लगाते हैं तो मैं भी उनके साथ-साथ ओम् नाम का गान किया करता हूं। और ऐसा करते हमें वर्षों बीत गये। आप ओम् नाम के जप से भवबंधन कटने की बात कहते हैं। भवबंधन तो क्या मेरे यह पिंजरे के लोहे के बंधन नहीं कटे तो भवबंधन क्या कटेंगे?

आश्रम अतिथि मुनि इसका उत्तर सुनने को आतुर हो उठे। जबकि ऋषि प्रथम मुस्कुराये और फिर गम्भीर होकर बोले कि 'तोते। यह ठीक है कि तुम वर्षों से ओम् नाम रटते चले आ रहे हो। पर यह तुम्हारा जाप नहीं था, यह तो तोता रटन्त ही था। क्योंकि इस ओम् नाम की रटन्त ने तुम्हारे मन को तनिक भी छुआ नहीं। यह तो वही बात है कि—

माला तो कर में फिरे और जीभ फिरे मुख मांहि।
मनि राम चहुंदिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांहि॥

इसीलिए योगदर्शनकार का कथन है कि—"तज्जपस्तदर्थ भावनम्" अर्थात् उस ओम् नाम का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। बिना अर्थ चिन्तन के किया गया जप तोते की भांति रटना के सदृश्य ही है। पर दुःख तो इस बात का है कि हमारे कुछेक पौराणिक भाई जहां कलियुग में नाम सुमिरन से पार उतरने की बात कहते हैं, वहां उसे जिस किसी भी रूप में हो स्मरण करने की बात कह दिया करते हैं। यथा—

"तुलसी अपने राम को रीझ बझो या खीज,
उलटे सीधे उपजेंगे पड़े भूमि में बीज।"

इतना ही नहीं, वे तो 'मरा-मरा' से 'राम-राम हो जाने की बात कहा करते हैं। उनका कथन है कि मुख्य स्थान भावना का है, शब्द का नहीं। भावना की बात हम भी कहते हैं पर योगदर्शनकार की भाषा में कि भावना अर्थ की हो न कि अनर्थ की। यथा— तज्जपस्तदर्थ भावनम्। निश्चय ही अर्थ की भावना से किया गया जप भवसिंधु को पार करने का प्रबलतम साधन है।

विना अर्थ चिन्तन के किया गया नाम स्मरण शाब्दिक व्यायाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं। ऐसा नाम-स्मरण हमारी वाणी की शोभा तो हो सकता है, पर आत्मा का आभूषण नहीं। वह तो उन तोतों की भांति रटना होगा कि मुख से तो निरन्तर यह रट लगा रहे हो कि "जाल पर मत बैठना, वहेलिया पकड़ लेगा" और फिर जा कर उसी जाल पर बैठ जाते हैं और पकड़े जाते हैं। पर ऐसा क्यों ? इसलिये कि उन शब्दों के अर्थ को उन्होंने हृदयंगम नहीं किया। उन शब्दों के अर्थों ने उनके हृदय को छुआ नहीं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमारा नाम-स्मरण हमारे हृदय को छूने वाला हो। जो हमारी वाणी की पुकार न होकर हृदय की पुकार, आत्मा की पुकार हो। नाम स्मरण के सम्बन्ध में आस्तिक शिरोमणि महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि—'जैसे मिशरी-मिशरी कहने से मुंह मीठा और नीम-नीम कहने से मुख कड़ुवा नहीं होता, किन्तु जीभ से चखने से मीठा और कड़ुवा जाना जाता है।' (एकादश समु०) काश ! हम भी इस नाम स्मरण रूपी अमृत रस को चख पाते कि जो हमारी वाणी से प्रस्फुटित हो रहा है, तभी हमारा नाम-स्मरण सार्थक है।

सच्चा नाम स्मरण—

वास्तविक नाम-स्मरण तो वही है कि जो हमारे हृदय से उठे और जिसका हमारे जीवन पर भी प्रभाव पड़े। महर्षि का कथन है कि "परमेश्वर के नामों का अर्थ विचार कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को वनाते जाना ही परमेश्वर का (सच्चा) नाम-स्मरण है।"

(एकादश समु०) ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना भी उसकी भक्ति करना ही है। आप कल्पना करें उस व्यक्ति की जो निरन्तर पिता जी-पिता जी की रट लगाये रखे किन्तु पिता जी का कहना एक भी न माने, तो उसका वह नाम-स्मरण किस काम का ? उससे तो वह व्यक्ति लाख गुना श्रेष्ठ है कि जो मुख से तो एक बार भी पिता का नाम नहीं लेता, पर उसकी आज्ञायें ही नहीं, इच्छाओं, अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति में अपने प्राणों तक को लगा देता है। हम भी परम पवित्र ओ३म् नाम का जप करते रहें, पर उसकी आज्ञाओं की अवहेलना, तो यह हमारा वास्तविक नाम-स्मरण नहीं होगा। वास्तविक नाम-स्मरण तो वही है कि मन से ओ३म् नाम का चिन्तन और कर्म से उसकी आज्ञाओं का पालन करते रहें। यदि परम पवित्र ओ३म् नाम के स्मरण से हमारा जीवन पवित्र नहीं हुआ तो हमारा नाम-स्मरण सच्चा नाम-स्मरण नहीं, वह तो मात्र लोक दिखावा है, आडम्बर है। ऐसे नाम-स्मरण का कोई लाभ नहीं। महर्षि का कथन है कि "जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।" (सप्तम समु०)

सदा ओ३म् नाम का स्मरण करें—

मानव मात्र के लिये स्मरण करने योग्य यदि कोई नाम है तो वह परम पिता परमात्मा का निज और मुख्य नाम ओ३म् ही है। वेद स्वयं "ओ३म् क्रतोस्मर" का उद्घोष कर ओ३म् के स्मरण की बात कहता है। योग दर्शन, उपनिषदें और गीता इसी के स्मरण की बात कहते हैं। प्रभु भक्त दयानन्द भी इसी नाम के

स्मरण का विधान कर गये हैं। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना प्रकरण में महर्षि लिखते हैं कि—"परमेश्वर के ओ३म् नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये, जिससे कि उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर भक्ति सदा बढ़ती जाये।" एक बार महर्षि ने अपने एक भक्त को उपदेश दिया था कि "जब शय्याशयी होने लगो तो प्रणव पवित्र का जाप किया करो। जब तक नींद न आ जाये पाठ करते रहो, यहां तक कि उसी नाम-स्मरण में ही सो जाओ। इससे उत्तमोत्तम लाभ होते हैं। वासनामय देह बदल जाती है।" (श्रीमद्दयानन्द प्रकाश पृष्ठ ३६७)

ओंकार-उपासना का फल—

वासनामय देह का बदल जाना, ओंकार-उपासना का एक अनुपम फल है क्योंकि वासनायें ही मानव के पतन का कारण बनती है, यहां तक कि जन्म-मरण का कारण भी वासना ही है। ओंकार-उपासना के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का मत है कि 'ईश्वर अपनी उपासना करने वालों के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय-शोकादि शत्रुओं को शीघ्र निवृत्त कर जितेन्द्रियपन आदि गुणों को देता है।" (ऋ० १/८७/७) इतना ही नहीं महर्षि तो यहां तक लिखते हैं कि "उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है, विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं का शोक और आनन्द दोनों नहीं होते।" (उपदेश मंजरी पृष्ठ १४) और "जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के समीप जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर

परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं ।" (सप्तम समु०) महर्षि की सुस्पष्ट मान्यता है कि "इस उपाय से वढ़कर पाप नाश करने के लिये अन्य उपाय नहीं है ।" (उपदेश मंजरी, पृष्ठ १३)

आत्मिक बल का संचार—

उपासना का सवसे वड़ा लाभ आत्मिक वल का संसार । ईश्वर वलों का भण्डार है, उसकी उपासना आत्मिक वल की वृद्धि करने वाली है । महर्षि ने क्या सुन्दर लिखा है कि उपासना से "आत्मा का वल इतना वढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घवरावेगा और सव को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी वात है ?" (सप्तम समु०) ।

★ ओंकार स्तोत्र ★

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है ।
ओ३म् है कर्त्ता विधाता, ओ३म् पालनहार है ।।
ओ३म् है दुःख का विनाशक, ओ३म् सर्वानन्द है ।
ओ३म् है वल तेज धारी, ओ३म् करूणा कन्द है ।।
ओ३म् सवका पूज्य है, हम ओ३म् का पूजन करें ।
ओ३म् ही के ध्यान से हम, शुद्ध अपना मन करें ।।
ओ३म् के गुरूमंत्र जपने से रहेगा शुद्ध मन ।
वुद्धि दिन-प्रतिदिन वढ़ेगी, धर्म में होगी लगन ।।
ओ३म् के जप से हमारा ज्ञान वढ़ता जायेगा ।
अन्त में यह जाप हमको मुक्ति तक ले जायेगा ।।

(२)

जीवन की घड़ियां यूं ही न खो, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।
चादर न लम्बी तान के सो, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।।
ओ३म् ही सुख का सार है, जीवन है, जीवन आधार है ।
उसकी प्रीति न मन से तजो, ओ३म् जपो ओ३म् जपो ।।
चोला मिला है कर्म का, करने को सौदा धर्म का ।
इसके सिवा मार्ग न को, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।।
साथी बना ले ओ३म् को, मन में बिठा ले ओ३म् को ।
उसकी प्रीति न मन से तजो, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।।
मन की गति सम्भालिये, ईश्वर को ओर डालिये ।
धोना जो चाहो, पापों को धो, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।।
मुख से ओ३ विचारिये, हृदय में अर्थ विचारिये ।।
स्वासों की माला तू इसमें पिरो, ओ३म् जपो, ओ३म् जपो ।

[illegible] ओ३म् मुख से उचारे चला जा ।
[illegible] अपने निवारे चला जा ।।
मनुष्य जन्म मिलता है खुशकिस्मती से ।
उसे मिला दें से संवारे चला जा ।।
करेगा हरी तेरी आशा की खेती ।
तू सीधा उसी के द्वारे चले जा ।।

हमारे प्रकाशन

	नाम पुस्तक	लेखक
१-	सदाचार सुधा	श्री महावीर सिंह मुमुक्षु
२-	उद्‌बोधन	”
३-	क्रांतिदूत दयानन्द	श्री यशपाल आर्यबन्धु
४-	ऋषि का जादू	”
५-	महामानव दयानन्द	”
६-	मुझे आर्यसमाज क्यों प्रिय है ?	”
७-	विश्व को आर्यसमाज की देन	”
८-	आर्यसमाज ही क्यों ?	”
९-	सत्यार्थ प्रकाश दिग्दर्शन	”
१०-	कर्मफल प्रश्नोत्तरी	”
११-	प्रार्थना विज्ञान	”
१२-	वेदों वाला ऋषि	”
१३-	आर्यसमाज क्या चाहता है ?	”
१४-	मृत्यु और उसका भय	”
१५-	ओंकार महिमा	”
१६-	मृत्यु और उस पर विजय	”
१७-	मानव निर्माण और आर्यसमाज	”
१८-	प्रखर राष्ट्रवाद के आदि प्रवक्ता	”
१९-	सुमन संचय	”
२०-	प्रभु है भी ?	साहित्याचार्य पं० बलदेवाग्निहोत्री

प्राप्ति स्थान :

आर्यसमाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद ।